Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
November 2024
ISSN 2229-3388

साम्प्रदायिक विसंगतियों को व्यक्त करता उपन्यास 'अगिन पाथर'

डॉ. साहेब हुसेन जहागीरदार
सह-प्राध्यापक,
हिंदी विभाग.
अंजुमन कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
विजयपुर (कर्नाटक)
Email: sjjahagirdar123@gmail.com

भारत आज कई समस्याओं से जूझ रहा है। उनमे सबसे बड़ी चुनौती के रूप में उभरी है – सांप्रदायिकता। सांप्रदायिकता की इस आग ने कई निष्पाप लोगों को भस्म कर दिया है। भारत में सांप्रदायिकता की जड़ें बहुत मजबूत हुई हैं। सांप्रदायिकता के अनेक रूपों में धार्मिक सांप्रदायिकता सबसे प्रमुख है। हिंदी के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में देश के सामने भयानक, अमानवीय, लोकतंत्र-विरोधी सांप्रदायिकता का गंभीर चित्रण किया किया। सन 2007 में प्रकाशित व्यास मिश्र का पहला उपन्यास 'अगिन पाथर' सांप्रदायिकता के भयावह चेहरे को बेनकाब करता है। भारतीय प्रशासनिक सेवा (आइ.ए.एस) में कार्यरत अनेक पदों पर कार्य करते हुए उपन्यासकार ने भारतीय समाज के ताने-बाने को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से देखा है, भोगा है। कदाचित उसी फलस्वरूप इस उपन्यास की सृष्टि हुई है। बाबरी मस्जिद ध्वंस की घटना को केंद्र में रखकर लिखा गया है। यह उपन्यास एक ओर कट्टरवादी सोच को उजागर करता है, तो दूसरी ओर सांप्रदायिक सदभाव स्थापित करनेवाली सोच की छटपटाह बयान करता है।

उपन्यास का कथानक कोयला खदानों के लिए प्रसिद्ध छोटा नागपुर का अगिन पाथर जिले का है जो नक्सलवाद से प्रभावित है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र शांतनु घोषाल 'वॉयस' अख़बार का संवाददाता है। 'वॉयस' अख़बार के प्रधान संपादक देव साहब के आदेशानुसार शांतनु 6 दिसंबर, 1992 को बाबरी-मस्जिद ध्वंस के बाद की प्रतिक्रिया की एक्सक्लूजिव स्टोरी करने के लिए अगिन पाथर पहुंचता है। अगिन पाथर में कोयला उद्योग, इस से जुड़े मजदूर, ठेकेदार, कर्मचारी अधिकारी, माफिया संस्कृति आदि का चित्रण मिलता है। देश के कोने-कोने से आए मजदूर, छोटे-बड़े व्यापारी, हिंदू-मुस्लिम बस्तियों आदि की सामाजिक संरचना भी मिलती है। शांतनु घोषाल के अतिरिक्त, अगिन पाथर जिले का उपायुक्त-शरद, उसकी पत्नी-इला, एस.पी-सक्सेना, राजनीतिज्ञ-कामरेड दस, विधायिका-देवी, इन्नन साहब आदि पात्रों के इर्द-गिर्द कथा संचारित होती है। इनके अतिरिक्त फगुनिया, जुबैर, चट्टोपाध्याय, रामभज, अरशद आलम आदि पात्र कथानक में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

उपन्यासकार ने बाबरी ध्वंस से पहले सन 1990 की रथयात्रा और उससे दोनों समुदाय के बीच उत्पन्न दुराव, अविश्वास और शंका का जिक्र किया है जो कालक्रम में चरम पर पहुंच जाता है। मन्दिर निर्माण आन्दोलनकारी बाबरी मस्जिद हटकर वहाँ राम-मंदिर निर्माण करने का संकल्प ले चुके

थे। उनका मानना था, "वही थी भगवान राम की पवित्र जन्मभूमि। मुगल शासक बाबर ने मन्दिर को ध्वस्त कर वहाँ मस्जिद तामीर करा दी थी। उसी स्थान पर मंदिर-निर्माण उनके लिए न केवल आस्था-विश्वास का प्रश्न था, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विजय-प्रतीक भी था। उनका मानना था कि राम जन्मभूमि पर खड़ी बाबरी मस्जिद के ढाँचे को हटाकर वहाँ भव्य राम मंदिर का निर्माण होना चाहिए।"[1] 1990 की रथयात्रा में अगिन पाथर जिले में सांप्रदायिक तनाव निर्माण हुआ था। वहाँ हिंदु-मुस्लिम सौहार्द में दरार आ गई थी। इसे उपन्यास में इस प्रकार चित्रित किया है।, "जुबैद को अचानक ही शिद्द्त से महसूस हुआ, खेल के मैदान के उसके साथी चीनी बाबू हिंदू थे। स्वरूप मंडल को लगने लगा, रोट्रेक्ट क्लब में उसके साथ काम करनेवाला नादिर मुसलमान था। मुहल्ले बन गए- हिन्दू मुहल्ले, मुसलमान मुहलल्ले और आदमी बन गया हिन्दू या मुसलमान। कुंडा, झाड़ग्राम, कटरा जैसे कस्बों और अगिन पाथर शहर में रामनवमी, ईद, मुहर्रम के अवसर पर झंडा ताजीए को लेकर बलवा होने लगा।"[2] रथयात्रा से पूर्व अगिन पाथर सांप्रदायिक सौहार्द का जीता-जगता उदाहरण था। धर्म के नाम पर लोग कभी बंटे नहीं थे। उसका वर्णन उपन्यास में कुछ इस प्रकार हुआ है- "यहाँ मंदिरों से झरते मंत्रों-भजनों की संगीत लहरियों में मस्जिदों से निस्सृत अजान के स्वर घुलते-मिलते रहे। गुरुद्वारों में शबद-कीर्तन तथा गिरजों में प्रार्थना की पवित्र वाणी हर धर्म, हर मजहब के अनुयायियों को ईश्वर का संदेश देती रही।"[3]

6 दिसंबर, 1992 के सुबह पाथर में तनाव था। अयोध्या में लाखों कारसेवकों का जमावड़ा था। कारसेवक देश के कोने-कोने से आए थे, उनका उद्देश्य एक ही था- बाबरी मस्जिद का ध्वंस और राम मंदिर का निर्माण। अगिन पाथर के उपायुक्त शरद भी अयोध्या में चल रही घटनाओं पर नजर रखे हुए थे। उन्हें कुछ अनहोनी की आशंका भी थी। शरद की पत्नी इला कहती है, "मुझे नहीं लगता कि सब कुछ शांति से गुजर जाएगा। लाखों उन्मादी लोग बौखलाए से घूम रहे हैं अयोध्या की गलियों में। महीनों से तैयारी चल रही है उनके ठहरने-खाने की वहाँ।"[4] मंदिर-मस्जिद विवाद के पीछे राजनीतिक स्वार्थ होता है। आम आदमी को धर्म की आड़ में छलावा किया जाता है। हिंदू और मुसलमान नेताओं के बहकावे में आकर खुद का नुकसान करवाती है। इस विचार को उपन्यासकार शरद के कथन के माध्यम से स्पष्ट करता है- "मंदिर-मस्जिद झगड़े के पीछे बुनियादी कारण धर्म नहीं है। सभी जानते हैं कि इसका कारण पूरी तरह से अपना-अपना राजनितिक स्वार्थ है। हिंदू या मुसलमानों का नेता बन सत्ता-सुख का मोह पाले चंद व्यक्तियों की हर बात को मान अपना घर फूंकने नहीं जा रही है जनता।"[5] अयोध्या में ६ दिसंबर तक की स्थिति को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि बाबरी-मस्जिद बच नहीं पाएगी। मुसलमानों के मन में इसकी चिंता स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मुसलमान बाबरी-मस्जिद को लेकर चिंतित थे, उपन्यास में इसका स्पष्टीकरण रजा साहब के विचार से होता अहै, "जब मस्जिद टूट ही जाएगी तब क्या कर लेगी आपकी पार्टी की सरकार। इधर यू.पी. गौरमेंट सुप्रीम कोर्ट में हलफनामा दे रही है, उधर कारसेवकों का रेला अयोध्या में उमड़ पड़ा है। अब देखना तो यह भी है कि सबसे बड़े कोर्ट में किए गए कौल पर यू.पी. के हुक्मरान कायम रहते हैं या

नहीं? मुसलमानों के हकूक और उनकी हिफाजत तो, सुप्रीम कोर्ट के सिवा अब नहीं लगता कि कोई कर सकेगा।"[6]

गरीबी-अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी अनेक समस्याओं से जूझ रहे इस देश की जनता का ध्यान हटाने के लिए राजनीतिक पाठ जात-पात, धर्म-संप्रदाय में समाज को बाँटकर वोट की राजनीति करते हैं। उपन्यास में इस ओर संकेत करते हुए उपन्यास का एक पात्र कामरेड दास कहता है, "केंद्र और प्रदेश की हुकूमत की बागडोर संभालनेवाला हुक्मरान लोग मिल-बैठकर हिंदू वोट के खातिर सब गडबड काज किया है। ई चाहता है कि जनता का ध्यान आभाव, गरीबी, जुल्म, बेरोजगारी से हट जाए और शोषक वर्ग का शासन निर्बंध, निरंतर चलता रहे। सामंत-पूंजीपति वर्ग के इशारे पर सब कांड हो रहा है।"[7] कामरेड दास के बात का समर्थन में उपन्यास एक और पात्र छोटा सिंघला के व्यक्तव्य से होता है। वह अपने आदमियों से कहता है, "मेरे विचार से अगर अयोध्या में बाबरी मस्जिद तोड़ दी जाती है तो यहाँ पर भी मुसलमान लोगों को धक्का लगेगा। उनका भय-संताप बढ़ेगा। वैसे मुसलमानों का भय-संताप बढना हमारे फायदे में रहेगा। डरेगा, तभी हम लोगों के शरण में आएगा। हमको यह देखना होगा कि मुसलमान हमे अपना हितू समझें, लेकिन हिंदू लोग हमें अपना विरोधी नहीं समझें। जैसा जरूरी होगा, बीच-बीच में आप सबको बताया जाता रहेगा।"[8] राजनीतिक दल और उनकी सरकारें वोट खातिर हिंदू और मुसलमानों को आश्वस्त करती रहती हैं कि हम आपके पक्ष में हैं और यह भोली-भाली जनता इनके दोगलेपन का शिकार हो जाती हैं। उपन्यास में इस दोगलेपन को जुबैर नामक पात्र के कथन से स्पष्ट किया है, "हिंदू को जतलाते रहो, राम मंदिर के हम विरोधी नहीं। मुसलमान को भरोसा देते रहो, तुम्हारी मस्जिद की हिफाजत के सारे सरंजाम हमने कर दिए हैं।"[9]

6 दिसंबर से पूर्व अयोध्या में कारसेवक जमा होते रहते हैं। हर ओर कारसेवकों का सैलाब दिखाई देता है। इससे देश के अल्पसंख्यकों में बाबरी मस्जिद ध्वंस का डर लगा हुआ था। दूसरी ओर फाल्गुन जैसे कट्टरपंथी हिंदू बहुत खुश हैं। वह कहता है, "भइया! बी.बी.सी. बोला है कि अयोध्या में चारों ओर साधु-ही-साधु दिख रहे हैं। कारसेवक भाई भी लाखों की संख्या में पहुंच चुके हैं। राम की अयोध्या में जय श्रीराम गूँज रहा है।"[10] अधिकांश हिंदू जानते थे कि अयोध्या में बाबरी मस्जिद को क्षति पहुंचाई गई तो सारे देश का मुसलमान आहत होगा, उन्हें धक्का लगेगा। परंतु कट्टरपंथी ताकतों को इसकी परवाह नहीं थी। वे अपनी बहुसंख्यक बलबूते पर मुसलमानों को दबाने की कोशिश कर रहे थे। उनके विचार से मुसलमानों के इस देश में रहना है तो बहुसंख्यकों की बात माननी होगी। उपन्यास में इस विचार को फाल्गुन नामक पात्र के कथन के माध्यम से स्पष्ट किया है। वह कहता है, "भइयाजी! मियांजी लोगों को भारत में रहना है तो वंदेमातरम् कहना होगा। अगिन पाथर में मुसलमानों को क्रोध आएगा तो हम लोग चुप नहीं बैठे रहेंगे। हथियार उधर हैं, तो इधर भी हैं।"[11] बाबरी घटना के बाद सांप्रदायिक दंगे होने का पूर्वानुमान सभी को था। इस हेतु सारी सांप्रदायिक शक्तियाँ अपनी तैयारी में जुटी थीं। जनबल और धनबल के साथ-साथ पुलिस, प्रशासन और मीडिया को भी अपने पक्ष में करने की यन्त्रणा आरंभ हो गई थी। इसको उपन्यासकार फाल्गुन के विचारों के

माध्यम से स्पष्ट किया गया है, "हथियार बल के साथ हमें अपना जनबल और धनबल भी तैयार रखना है। एक चिंगारी उधर से उठी नहीं, कि इधर मशाल भक से जल उठेगी। मुहल्ले-के-मुहल्ले तबाह कर दिए जाएँगे।"[12] वह आगे कहता है, " प्रशासन को मुसलमान घरों में हथियार होने की खबरें देते रहेंगे। अख़बारों को भी अपने पक्ष में रखना होगा। हमलोग देखार नहीं होंगे, नए-नए लडकों को आगे रखेंगे। पुलिस के आने पर पुलिस के साथ लडकों को समझाने के काम में लग जाएँगे। और जरूरत पड़ने पर फरार हो जाएँगे।"[13]

मस्जिद ध्वंस के बाद वोट की राजनीति तेज हो जाती है! हन्नान साहब एक धर्मनिरपेक्ष पार्टी का जिला अध्यक्ष है। केंद्र में उसके पार्टी की सरकार है। वे अपने को मुसलमानों के रहनुमा समझते हैं। परंतु बाजी मार ले जाती हैं राज्य में सत्तासीन पार्टी की विधायिका-देवी। देवी मुसलमानों का वोट बटोरने के लिए मुस्लिम घरों पर बाबरी मस्जिद ध्वंस की प्रतिक्रिया में काले झंडे लगवाती है, मुस्लिम युवकों को भड़काकर रेलवे फाटक पर धरना दिलवाती है। जब हन्नान साहब को इस बात का पता चलता है कि झाड़ग्राम में काले झंडे लहरा रहे हैं, तो वे भीतर से तिलमिला उठते हैं। वे सोचते हैं, "काला परचम! प्रोटेस्ट मार्च! हन्नान का दिमाग झडग्राम की तरफ चला गया। ऐसे मौके पर उन्हें वहाँ होना चाहिए। अपने वोटरों के बीच में। झाड़ग्राम के मुसलमानों के गुस्से का फायदा देवी उठा लेगी। अगर गुस्सा फटा, तो राना,फगुनिया बलवा करवाने का मौका नहीं चूकेंगे। उन्हें बिना ज्यादा देर किए झाड़ग्राम चले जाना चाहिए।"[14] राजनीतिक पार्टियाँ सत्ता लालच में मंदिर-मस्जिद जैसे सांप्रदायिक मुद्दों को उछाल कर अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकती हैं। उपन्यास में हन्नान साहब को बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद दिए गए प्रधानमन्त्री के कुछ शब्द याद आते हैं। तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने कहा था, "... हिंदुवादी दलों ने सत्ता के लालच में जो मार्ग अपनाया है, वह भारत राष्ट्र के पुनीत सिद्धांतों, आदर्शों एवं परंपराओं के साथ सीधे टकराव का रास्ता है।"[15]

उधर अयोध्या में बाबरी मस्जिद ध्वंस की जाती है और इधर अगिन पाथर में कट्टरवादी हिंदुओं द्वारा खुशियाँ मनाई जाती हैं। विजय दिवस, विजय पखवाडा मनाने की तैयारी हिंदू युवकों द्वारा की जाती है। बाबरी मस्जिद ध्वंस का विजयोत्सव मनाने का संकल्प लिया जाता है। फाल्गुन के नेतृत्व में केसरिया झंडे हाथ में लिए कई हिंदू युवक नारे लगाते हैं, "सौगंध राम की खाते हैं, मंदिर वहीं बनाएँगे।"[16] सांप्रदायिक उन्माद युवकों के सर चढ़ कर बोल रहा था। पूरे सांप्रदायिक नशे में चूर थे। अकर्मण्यता के कारण केंद्र सरकार ने यू.पी. सरकार को बर्खास्त किया था। इस संदर्भ में फाल्गुन कहता है, "क्या हुआ जो. यू.पी. की सरकार डिसमिस हो गई? हजारों सरकारें न्यौछावर होंगी। श्रीराम लला की राह में। लेकिन यू.पी. सरकार को बर्खास्त करनेवाले केंद्र की विधर्मी को हम बताना चाहते, आग से मत खेलो। आग से खेलोगे तो भस्म हो जाओगे। बहुत हो गया भारत माँ के धवल आंचल में लगे काले दागों को तुष्ट करने का काम। अगर इन काले दागों को भारत में रहना है तो वंदे मातरम कहना होगा। नहीं चलने देंगे हम दो तरह का कानून।"[17] मुसलमानों में भय का वातावरण था। बाबरी मस्जिद टूटने के बाद बहुत डरे हुए थे। बहुत से मुसलमानों को यह भी डर सता रहा था कि उन्हें भी कहीं भारत से निर्वासित न किया जाए। उपन्यासकार ने इसी सोच को उपन्यास

में व्यक्त किया है, "ऐसे लोग भी कम न थे जिन्हें आशंका हो चली थी कि पूरी मुस्लिम कौम को हिंदुस्तान से दफा करने के षड्यंत्र परवान चढ़ रहे थे।"[18]

भारत के मुसलमानों पर कट्टरपंथी हिंदुओं द्वारा हर समय देशभक्ति को साबित करने के लिए कहा जाता है। उन्हें पाकिस्तानी समर्थक होने का लेबल लगा दिया जाता है। उपन्यास में इस सोच को उपन्यासकार ने फाल्गुन के कथन के माध्यम से स्पष्ट किया है। फाल्गुन कहता है, "भइया! जो भारत की खाते हैं, उन्हें भारत का ही नाम जपना होगा। पाकिस्तान का नहीं।"[19] मुसलमान की देशभक्ति मात्र धर्म के आधार पर शक के कटघरे में है। इस चिंता को लेखक उपन्यास में उपन्यास का पात्र मुख़्तार अहमद के कथन से अभिव्यक्त करता है, "आजादी के इतने दिनों बाद तक भी हकीकत यही है कि हमें मुसलमान होने के कारण कदम-दर-कदम अपनी नेकनीयती को साबित करना पड़ता है। हम पर सवालिया निशान लगाए जाते हैं। आखिर एक जिन्ना की वजह से हम इतने सारे मुसलमान किस-किस को अपनी देशभक्ति का इम्तिहान देते रहेंगे?"[20] भारत का मुसलमान सच्चा देशभक्त है। आजादी की लड़ाई में कई मुसलमानों ने अपना बलिदान दिया। पाकिस्तान बनने के बाद भी उसने भारत में ही रहना स्वीकार किया जबकि उसके लिए एक नए देश का विकल्प खुला था। ऐसे भारतीय मुसलमानों को पग-पग पर देशभक्ति साबित करने के लिए कहा जाता है। उपन्यासकार ने ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे को उपन्यास के पात्र मुख़्तार अहमद के माध्यम से उठाने का प्रयास किया है। मुख़्तार अहमद कहता है, "आजादी की जंग में मुसलमानों ने भी अपनी शहाड़तें दीं। अंग्रेज सिपाहियों के कोड़े खाए। जेल की जिल्लतें सहीं। लेकिन ऐसा क्यों है कि जिन लोगों के हाथ महात्मा गाँधी के खून से सुर्खरू हैं, वे खुद को देशभक्त कहें, और मूलक का वह मुसलमान, जिसने बंटवारे के बाद भी हिंदुस्तान में रहना कबूल किया, उसे अपनी देशभक्ति का इम्तहान देना पड़े? आखिर, देशभक्ति की पहचान मजहब से क्यों हो?"[21]

उपन्यास में लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहे जानेवाला पत्रकारिता की निष्पक्षता पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया है। आज पत्रकारिता को एक व्यवसाय के रूप में देखा जा रहा है। पत्रकारिता से जुड़े लोग हानी-लाभ के अनुसार अपनी लेखनी चला रहे हैं। मीडिया का एक बड़ा वर्ग चंद पूँजीपतियों तथा राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुथली बन कर रह गया है। उसकी ओर दृष्टिपात करते हुए लेखक उपन्यास का पात्र शांतनु की सोच के माध्यम से कहता है, "पत्रकारिता या मिशन? पत्रकारिता लाभ-हानी के सिद्धांतों से संचलित व्यवसाय है या सामाजिक सरोकारों के लिए समर्पित मिशन? पत्रकार का काम क्या है? क्या खबरों को सच्चाई के निकष पर परखकर वस्तुगत ढंग से प्रस्तुत करना अथवा अफवाहों एवं खबरों का आत्मगत घालमेल परोसना। क्या मीडिया मालिकों, प्रबंधन, संपादकों को निजी आस्थाओं-हितों से इतर पत्रकार का अपना कोई व्यापक सामाजिक दायित्व हो सकता है? दोनों में टकराव की दशा में क्या कर्तव्य है पत्रकार का?"[22]

उपन्यास में जहाँ एक ओर कट्टरपंथी सांप्रदायिक शक्ति का तांडव देखने को मिलता है, तो दूसरी ओर शांति, भाईचारा, गंगा-जमुनी तहजीब के रक्षक सांप्रदायिक सौहार्द को बनाए रखने की कोशिश में जुटे हैं। उपन्यास में ऐसे भी कई उदहरण देखने को मिलते हैं। बाबरी मस्जिद ध्वंस के

विरोध में कुछ मुस्लिम युवक मुस्लिम बहुल इलाका जीतपुर मार्केट बंद करवाने आते हैं। उस मार्केट में अग्रवाल और मित्तल जैसे हिंदुओं के दुकाने लूटने का प्रयास करते हैं, तो अरशद आलम बीच में आकर उनकी रक्षा के लिए खड़ा होता है। उस उग्र भीड़ को ललकारता है, "खबरदार! अगर एक भी स्टिक इन भाइयों के ऊपर अब पड़ी या किसी ने इनकी दुकानों का कोई भी नुकसान किया तो! परवर्दिगार अल्लाहताला की कसम, तुममें से कोई भी साबुत अपने घरों को वापस न लौट पाएगा।"[23] आम आदमी शांति से रहना चाहता है। वह हिंदू-मुस्लिम भाईचारा चाहता है। साम्प्रादायिक सौहार्द को बनाए रखना चाहता है। जब अगिन पाथर के उपायुक्त शरद दंगे में घायल हुए रामभज अग्रवाल से उसकी तबीयत के बारे में पूछते हैं, तो रामभज कहता है, "... आज अगर रमज़ानपुर के अरशद आलम, महबूब, मकसूद और उनके मुसलमान मुलाजिम न रहे होते, तो शायद यह बूढ़ा आपकी बातें सुनने के लिए जीवित नहीं बचा होता डी.सी.साहब। रोकीए इस पागलपन को। अयोध्या में आग लगे, चाहे बज्र पड़े, हमें अगिन पाथर में घृणा का नरक नहीं चाहिए।"[24]

उपन्यासकार ने इस उपन्यास में कई चिंताओं को व्यक्त करने का प्रयास किया है। धर्म की आड़ में हिंदू-मुसलमानों का खून बहानेवाली उन कट्टरपंथी ताकतों का डटकर विरोध होना चाहिए जो श्री राम और अल्लाह जैसे पवित्र शब्दों का धार्मिक उन्माद बढ़ाने के लिए प्रयोग करते और करवाते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए अगिन पाथर के उपयुक्त शरद की पत्नी इला कहती है, उपन्यासकार की चिंता यह भी है कि पुलिस को अपनी छवि एवं चरित्र सुधार लेना चाहिए। आम-आदमी को शत्रू न समझकर मित्र समझना चाहिए। इस चिंता को उपन्यास के पात्र कामरेड दास के वक्तव्य से स्पष्ट किया है, "क्या ऐसी ट्रेनिंग नहीं मिलती कि वह दोषी पहचानकर गोली चलाए। जनता को अपना शत्रु, अपना दुश्मन मानने की ट्रेनिंग दी जाति क्या? अंग्रेज सब भाग गया इस देश से। पुलिस का वही पुराना चरित्र कैसे बना रहेगा? इस चरित्र को भी बदलना चाहिए। बदलना होगा।"[25]

उपन्यास का अंत अगिन पाथर के हालातों का धीरे-धीरे सामान्य होने से होता है। परंतु सांप्रदायिक वैमनस्य के बीज दा पीढ़ी में बोने का उदाहरण मिलता है। शरद जैसे कर्मठ, कर्तव्यशील, धर्मनिरपेक्ष अधिकारी को कठमुल्लों द्वारा सांप्रदायिक होने का लेबल लगा दिया जाता है। छोटे-से-छोटे बच्चों के मन में भी सांप्रदायिकता का विष घोल दिया जाता है। जब शरद की गाडी गुजरने लगती है, तो एक लड़का जमीन से पत्थर उठाकर कहता है, "...मादर...,हरामी,साला, हिंदू-विरोधी उपायुक्त! बाबरी औलादों का पक्षधर बना फिरता है। बेडा गारत हो बदमाश का।"[26]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'अगिन पाथर' में व्यास मिश्र ने जहाँ आधुनिक विचारधारा के प्रभाव से सांप्रदायिकता के प्रति विरोधी रुख अपनाया है, वहीं भारतीय परंपरा में ऐसे तत्वों में सामंजस्य बनाने की कोशिश की है, जो सामसिक समन्वयशीलता के पक्षधर और सांप्रदायिकता के विरोधी हैं। यही विजयकुमार के शब्दों में कहा जाए तो, "तमाम मानवीय और सामाजिक संपर्कों, सरोकारों को एक चक्रवातीय झटके से तहस-नहस कर देने वाली इस आधुनिक घटना के दीर्घावधि प्रभाव को संप्रदाय निरपेक्ष, धर्मशक्ति निरपेक्ष, व्यवसाय निरपेक्ष और भूगोल निरपेक्ष दृष्टि से देखने की जो एक शुद्ध मानवीय दृष्टि इस उपन्यास में देखने को मिलती है उससे इस उपन्यास को

अतिरिक्त जीवंतता मिलती है। जहाँ राजनीति के व्यवसायी इन सांप्रदायिक घटनाओं में आरोपित सन्दर्भों से अपना बचाव करते दृष्टिगत होते हैं, वहीं व्यास मिश्र उन्हीं घटनाओं के अवशेष के आसपास होते उन मानवीय सन्दर्भों की तलाश करते हैं जो टूटे हुए तन्तुओं को जोड़ते हैं।"[27]

सन्दर्भ:

1. व्यास मिश्र, अगिन पाथर, पृ.09
2. वही, पृ.15
3. वही, पृ.14-15
4., पृ.35 वही
5. वही, पृ.21
6. वही, पृ.22
7. वही पृ.42
8. वही, पृ.33
9. वही, पृ.115
10. वही, पृ.34
11. वही, पृ.36
12. वही, पृ.36-37
13. वही, पृ.37
14. वही, पृ.63
15. वही, पृ.62
16. वही, पृ.72
17. वही, पृ.72
18. वही, पृ.59
19. वही, पृ.73
20. वही, पृ.310
21. वही, पृ.313.
22. वही, पृ.317
23. वही , पृ.203
24. वही, पृ.246
25. वही, पृ.394
26, वही, पृ.407
27. नामवर सिंह,(संपा), आलोचना(पत्रिका) पृ.106